अन्तिम कलश है न?

सुकवि-जन-पयोजानन्दि-मित्रेण शस्तं,
ललितपदनिकायैर्निर्मितं शास्त्रमेतत्।
निजमनसि विधत्ते यो विशुद्धात्मकाङ्क्षी,
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।३०८।।

उस ओर अर्थ है। अब यह नियमसार पूरा करते हैं।

श्लोकार्थ : सुकविजनरूपी कमलों को आनन्द देनेवाले... जैसे कमल को खिलाने में सूर्य निमित्त है, उसी प्रकार सुकविजनरूपी कमलों को आनन्द देनेवाला **सूर्य ने... सुकविजनरूपी कमलों को आनन्द देनेवाले (-विकसित करनेवाले) सूर्य ने...** जैसे कमल को खिलाने में सूर्य कारण है, उसी प्रकार **सुकविजनरूपी कमलों को आनन्द देनेवाले...** यह कवि सूर्य है। **ललित पदसमूहों द्वारा...** बहुत ऊँचे पद के समूह द्वारा **रचे हुए इस उत्तम शास्त्र को जो विशुद्ध आत्मा का आकाँक्षी जीव...** विशुद्ध अर्थ पवित्रता के अर्थ में है। एकदम शुद्ध। विशुद्ध निर्मल आनन्द पवित्र धाम भगवान, उसे यहाँ विशुद्ध शब्द के अर्थ में कहा है। यहाँ विशुद्ध तो शुभभाव को भी कहा जाता है, परन्तु यहाँ विशुद्ध तो पूरे आत्मा को (कहा है)।

निर्मलानन्द प्रभु, अकेला ज्ञानानन्द से भरपूर आत्मा, ऐसे **विशुद्ध आत्मा का आकाँक्षी जीव...** उसकी जिसे अभिलाषा है, ऐसा जीव। **निज मन में धारण करता है,...** निज मन में शास्त्र के भाव को धारण करता है। मन में अर्थात् ज्ञान में, उनका कहा हुआ भाव—शुद्ध आत्मा पवित्र—उसे श्रद्धा-ज्ञान से धारण करता है। वह जीव **परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है।** मोक्ष का मार्ग और मोक्ष दोनों बतला दिये। **वह परमश्री...** परम आनन्दरूपी लक्ष्मी, मुक्ति की-सिद्धपद की -पूर्ण आत्मा की दशा, उस रूपी

कामिनी—उसकी जो परिणति—स्त्री, उसका वल्लभ होता है। वह पर्याय इसे अब कभी छोड़ेगी नहीं। पूर्ण आनन्द की प्राप्ति। ग्रन्थ में कहे हुए भाव, स्वभाव का आश्रय लेता भाव, वह भाव मोक्ष का मार्ग है। इसे जिसने अन्तर में धारण किया - मोक्ष का मार्ग, पूर्ण पवित्र भगवान आनन्दस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता से मार्ग को धारण किया, वह सर्व काल में पूर्ण आनन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति को प्राप्त करेगा। ऐसा कहा।

श्लोक - ३०९

(अनुष्टुप्)

पद्म-प्रभाभिधानोद्घ-सिन्धुनाथ-समुद्भवा।
उपन्यासोर्मिमालेयं स्थेयाच्चेतसि सा सताम्।।३०९।।

(वीरछन्द)

पद्मप्रभ नामक उत्तम सागर से जो उत्पन्न अहो।
उर्मिमाल यह सत्पुरुषों के चित में स्थित सदा रहो॥३०९॥

[श्लोकार्थः—] पद्मप्रभ नाम के उत्तम समुद्र से उत्पन्न होनेवाली जो यह उर्मिमाला—कथनी (टीका), वह सत्पुरुषों के चित्त में स्थित रहो।३०९।

श्लोक - ३०९ पर प्रवचन

(श्लोक) ३०९।

पद्म-प्रभाभिधानोद्घ-सिन्धुनाथ-समुद्भवा।
उपन्यासोर्मिमालेयं स्थेयाच्चेतसि सा सताम्।।३०९।।

श्लोकार्थ : पद्मप्रभ नाम के उत्तम समुद्र से उत्पन्न होनेवाली जो यह उर्मिमाला— टीका को ऊर्मिमाला-उर की-हृदय की धारावाही। पद्मप्रभमुनि स्वयं मुनि हैं, सन्त हैं, दिगम्बर हैं। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलनेवाले हैं। वे कहते हैं कि ऐसे **पद्मप्रभ नाम के उत्तम समुद्र से उत्पन्न होनेवाली जो यह उर्मिमाला—** हृदय की अन्दर

ऊर्मि से हुई यह कथा, ऐसा कहते हैं। **कथनी (टीका), वह सत्पुरुषों के चित्त में स्थित रहो।** सत्पुरुषों के, धर्मात्मा के ज्ञान में यह भाव स्थिर रहो। यह टीका स्थिर रहो अर्थात् भाव स्थित रहो। टीका का भाव तो यह है। परम निरपेक्ष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, व्यवहार के निमित्त की अपेक्षा बिना की दशा, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहा है।

वह सत्पुरुषों के चित्त में स्थित रहो। ज्ञानी के ज्ञान में ही वह स्थित होता है, ऐसा कहते हैं। अज्ञानी को नहीं होता। आहाहा! इसमें कहा हुआ भाव—पूर्णानन्द प्रभु, ऐसा आनन्द और ज्ञान के स्वभाव का सागर आत्मा, उसमें भाव उसकी पर्याय में यह वस्तु ऐसी है, ऐसा स्थिर होकर रहो। ऐसा यहाँ आशीर्वाद अथवा मांगलिक किया है। अन्तिम मांगलिक है न?

श्लोक - ३१०

(अनुष्टुप्)

अस्मिन् लक्षणशास्त्रस्य विरुद्धं पदमस्ति चेत्।
लुप्त्वा तत्कवयो भद्राः कुर्वन्तु पदमुत्तमम्।।३१०।।

(वीरछन्द)

लक्षण शास्त्रों से विपरीत कोई पद इसमें किञ्चित हो।
उसे लोप कर सज्जन कविगण उत्तम पद निर्माण करो॥३१०॥

[श्लोकार्थः—] इसमें यदि कोई पद लक्षणशास्त्र से विरुद्ध हो तो भद्र कवि उसका लोप करके उत्तम पद करना।३१०।

श्लोक -३१० पर प्रवचन

(श्लोक) ३१०।

अस्मिन् लक्षणशास्त्रस्य विरुद्धं पदमस्ति चेत्।
लुप्त्वा तत्कवयो भद्राः कुर्वन्तु पदमुत्तमम्।।३१०।।

श्लोकार्थ : इसमें यदि कोई पद लक्षणशास्त्र से विरुद्ध हो... अनुभव से विरुद्ध नहीं। शास्त्रों के कोई शब्दों में लक्षण शास्त्र अनेक प्रकार के हैं। धातु, काल, भेद इत्यादि शब्द विरुद्ध हों **तो भद्र कवि उसका लोप करके उत्तम पद करना।** सरल प्राणी, भद्र जीव, उस शब्द का कुछ मेल में अमेल होता हो तो उसका लोप करके उत्तम पद करना। ऐसी अपनी निर्मानता बतलायी है। शब्द में, हों! शब्द की रीति की पद्धति में। कोई कानोमात्रा कुछ फेरफार हो (तो उत्तम पद करना)।

श्लोक - ३११

(वसंततिलका)

यावत्सदागतिपथे रुचिरे विरेजे,
तारागणैः परिवृतं सकलेन्दुबिम्बम्।
तात्पर्यवृत्तिरपहस्तितहेयवृत्तिः,
स्थेयात्सतां विपुलचेतसि तावदेव।।३११।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ शुद्धोपयोगाधिकारो द्वादशमः श्रुतस्कन्धः।।

समाप्ता चेयं तात्पर्यवृत्तिः।

(वीरछन्द)

जब तक तारागण से शोभित चन्द्रबिम्ब उज्ज्वल नभ में।
हेय वृत्ति नाशक यह टीका रहो सज्जनों के उर में॥३११॥

[श्लोकार्थः—] जब तक तारागणों से घिरा हुआ पूर्णचन्द्रबिम्ब (पूर्ण चन्द्र का गोला) सुन्दर गगन में विराजे (शोभे), ठीक तब तक तात्पर्यवृत्ति (नाम की यह टीका)—कि जिसने हेयवृत्तियों को निरस्त किया है (अर्थात् जिसने छोड़ने योग्य समस्त विभाववृत्तियों को दूर फेंक दिया है वह)—सत्पुरुषों के विशाल हृदय में स्थित रहो।३११।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) शुद्धोपयोगाधिकार नाम का बारहवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

इस प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित) तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका के श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह कृत गुजराती अनुवाद का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।

श्लोक - ३११ पर प्रवचन

अन्तिम कलश, ३११।

यावत्सदागतिपथे रुचिरे विरेजे,
तारागणैः परिवृतं सकलेन्दुबिम्बम्।
तात्पर्यवृत्तिरपहस्ततहेयवृत्तिः,
स्थेयात्सतां विपुलचेतसि तावदेव।।३११।।

श्लोकार्थ : जब तक तारागणों से घिरा हुआ पूर्णचन्द्रबिम्ब... चन्द्र के आसपास तारागण रहते हैं। ऐसा जो चन्द्र, वह सदा उसकी गति के सुन्दर मार्ग में विराजता है। वह पूर्ण चन्द्र का गोला सदा उसकी गति में गमन करता है न सदा ही? गति के सुन्दर मार्ग में शोभता है। **ठीक तब तक तात्पर्यवृत्ति (नाम की यह टीका)—** चन्द्र जब तक उसकी गति में शोभता है, तब तक यह टीका शोभे, ऐसा कहते हैं। **ठीक तब तक तात्पर्यवृत्ति (नाम की यह टीका)—** तात्पर्यवृत्ति है न? तात्पर्यसार **जिसने हेयवृत्तियों को निरस्त किया है...** सम्पूर्ण टीका में जो पुण्य और पाप के विकल्प, निमित्त, उन सबको जिसने हेय बनाया है। समझ में आया?

भगवान पूर्णानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, परमात्म अपना निज स्वरूप स्वभाव, उसे उपादेय करके, उसके अतिरिक्त दूसरी चीजों को हेय बनाया है। वास्तव में तो यहाँ पर्याय

को हेय बनाया है। ५० (गाथा में)। एक ही भगवान आत्मा अभेद। पर्याय का भेद नहीं, गुण का भेद नहीं। कहा है न? क्षायिकभाव की पर्याय भी हेय है। आहाहा! वह परद्रव्य है। स्वद्रव्य की पूर्णता उसमें नहीं है, इसलिए वह परद्रव्य है और परभाव है। स्वभाव एकरूप त्रिकाल है और एक समय की पर्याय; यह स्वभाव, वह परभाव है; यह उपादेय, तो वह हेय है। इस प्रकार पूरी टीका में ऐसा कहा है, कहते हैं। कहो, समझ में आया?

हेयवृत्तियों को... छोड़नेयोग्य परिणति को **निरस्त किया है...** निरस्त किया है। **(अर्थात् जिसने छोड़ने योग्य समस्त विभाववृत्तियों को दूर फेंक दिया है वह)— सत्पुरुषों के विशाल हृदय में...** सत् पुरुषों के विशाल ज्ञान में, वह **स्थित रहो।** वृत्तियों को हेय किया और त्रिकाल ज्ञायकभाव को उपादेय करके स्थापित किया है कि ज्ञानी के हृदय में यह बात रहो। ओहोहो!

लो! यह नियमसार का वाँचन पूरा हुआ। पश्चात् इसमें अधिक स्वयं कहा है। अन्तिम हिम्मतभाई का नाम अब इसमें डाला। अन्त में। दूसरे उसमें नहीं डाला। जबरदस्ती डाला न? **(अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) शुद्धोपयोगाधिकार नाम का बारहवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।** यह बारह अधिकार हैं। **इस प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित) तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका के श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह कृत गुजराती अनुवाद का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।** लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)